वीरेंद्र बहादुर सिंह

आज भी मानवता जीवित है

"इस घोर कलियुग में जहां कोई चुटकी भर नमक भी मुफ्त में नहीं देता, वहां किडनीदान महादान है, जिसके द्वारा मानवता को उजाला मिलता है। मंतव्य, देश को तुम्हारे जैसे लाखों युवकों की ज़रूरत है।" – शरतचंद्र

कर्तव्य और मंतव्य दोनों जुड़वां भाई थे। दोनों गोरे और गठीले थे। हर बात में एक-दूसरे के साथ देते थ। मंतव्य रोना शुरू करता तो उसकी रुदनयात्रा में कर्तव्य भी शामिल हो जाता। पापा एक को गोद में बिठाते तो दूसरा धक्का देकर उसी गोद में बैठने की कोशिश करता।

कर्तव्य स्वभाव से शांत और सरल था। मंतव्य स्वभाव से शरारती और उपद्रवी। खाना देने में देर हो जाती तो बर्तन पटकना, दरवाजे को धकेलना, कर्तव्य को धक्का देना, ये सब उसकी करतूतें थीं, जिनसे उसकी मां वत्सला देवी कभी-कभी परेशान होकर कहतीं, "काश, वृद्धाश्रम की तरह शरारती बच्चों को संभालने के लिए कोई स्पेशल चिल्ड्रन होम होता तो कितना अच्छा होता।"

अभी उनकी बात पूरा भी न होती कि मंतव्य पीछे से आकर वत्सला देवी से लिपट जाता। तब उनका क्रोध स्नेह के झरने में बदल जाता। मंतव्य को गोद में लेकर वत्सला देवी मन ही मन कहतीं, "नहीं, मेरे लाल, तुझे आंखों के सामने से हटाने तो मेरा मातृत्व लजाएगा। शरारत करना तेरी उम्र है।"

थोड़ी ही देर में मंतव्य खिलौनों की ओर भाग जाता और मातृप्रेम का प्यासा कर्तव्य मां की गोद में सिमट जाता। वत्सला देवी सामने बैठे अपने पति सौरभ कुमार से कहतीं, "आप इस तरह बैठे-बैठे क्या देखते रहते हैं? दोनों बच्चों को संभालना मेरे लिए अग्निपरीक्षा है। अगर आप एक बच्चे को संभाल लें तो मेरी तकलीफ थोड़ी कम हो जाएगी।"

वत्सला देवी की बात सुन कर सौरभ कुमार बोले, "तुम पर भगवान ने मेहरबानी कर के तुम्हें राम-लक्ष्मण की जोड़ी दी है, इसलिए उसका आनंद लो। समय गुजरते देर नहीं लगती। कल को दोनों स्कूल जाने लगेंगे तो तुम्हारे काम का बोझ हल्का हो जाएगा।"

कर्तव्य और मंतव्य दोनों जब तीन साल के हो गए तो उन्हें केजी में दाखिला दिला दिया गया। वत्सला देवी आचार्य से बात कर रही थीं, तभी मंतव्य आचार्य के पास पड़ी कुर्सी पर चढ़ गया और जोर-जोर से ताली बजाने लगा। वत्सला देवी उसे मारने को बढ़ीं। तब आचार्य ने रोकते हुए कहा, "वत्सला बहन, नई हवा में जन्मे बच्चों को पुराने ढंग से नहीं पाला जा सकता। इनके नखरे हमें सहने होंगे। शिक्षक और आचार्य के रूप में हमारी भी परीक्षा है।"

यह कह कर आचार्य ने मंतव्य को गोद में उठा कर कहा, "अब आप जा सकती हैं। हमारा स्कूल कोई धंधादारी स्कूल नहीं है। यह शिक्षा को समर्पित परिवार द्वारा चलता है। मैं, मेरी पत्नी, मेरी दो बहनें और बहू, सब मिल कर स्कूल की जिम्मेदारी निभाते हैं। यहां आने वाला हर बच्चा माता सरस्वती की संतान है। मां सरस्वती की थाती समझ कर हम उनका मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें गढ़ते हैं।"

वत्सला देवी बोलीं, "आचार्जी, मेरा यह मंतव्य बहुत शरारती है। इसकी छोटी-बड़ी शरारतें झेल लीजिएगा, यही मेरी विनती है। और मेरा कर्तव्य आपको जरा भी परेशान नहीं करेगा। वह बुद्धिमान और शांत है।"
यह कह कर वत्सला देवी रो पड़ीं। आचार्य ने उन्हें सांत्वना देने के साथ-साथ वचन भी दिया।
कर्तव्य को पढ़ाई में रुचि थी और मंतव्य को खेलकूद में। दोनों की मनोवृत्ति पहचान कर आचार्य शरतचंद्र उन्हें उसी तरह का मार्गदर्शन देने लगे। वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता में मंतव्य हर खेल में प्रथम आता और कर्तव्य परीक्षा में प्रथम आता। आचार्य की देखरेख और भावनापूर्ण व्यवहार से मंतव्य का डर निकल गया। उसकी शरारतें कम हो गईं। घर से लाए लंचबॉक्स से आचार्य कौर न भर लें, तब तक वह खुद कुछ नहीं खाता था।
आचार्य शरतचंद्र अपनी पत्नी से कहते, "वरदाजी, जिन्हें मां-बाप बनना नहीं आता, उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में आना ही नहीं चाहिए। बच्चों को गढ़ना एक साधना है। शिक्षक होना केवल नौकरी करना नहीं है, बल्कि बच्चों की चेतना का माली है। आत्मसंतोष ही उसका पुरस्कार है।"
वरदाजी कहतीं, "लेकिन आप जैसे भावना वाले कितने शिक्षक हैं?
आज के जमाने में आदर्शवादी प्रशंसा के नहीं बल्कि आलोचना के पात्र माने जाते हैं। मुझे तो आपकी पत्नी होना गर्व की बात लगती है।"
समय बीतता गया। दोनों भाई उसी स्कूल में पढ़ते रहे। मंतव्य धीरे-धीरे अपने असली पिता सौरभ कुमार को भूल सा गया था। आचार्य उसे बगीचे में ले जाते, फूल-पौधों का परिचय कराते और खेलों में शामिल करते। प्राथमिक, माध्यमिक और हायर सेकेंडरी की पढ़ाई पूरी कर दोनों भाई कालेज पहुंचे। मंतव्य ने आर्ट्स और कर्तव्य ने कॉमर्स चुना।
मंतव्य का व्यक्तित्व अनोखा था। उसका हंसमुख स्वभाव, सबको सम्मान देने की आदत और प्रतियोगिताओं में भाग लेने की लगन। इन सब के कारण वह कालेज का सम्मान्य छात्र बन गया। जब उसे पुरस्कार मिलता, ट्राफी या मेडल घर ले जाने के बजाय वह आचार्य शरतचंद्र के पास दौड़ता, आशीर्वाद लेता और कहता, "सर, अगर आपने मुझे अपनाया न होता तो मैं शरारती विद्यार्थी से गुंडा बन गया होता। मेरे असली पिता आप हैं। जैसा भी मैं था, आपने मुझे वैसे ही स्वीकार किया। आपका ऋण मैं कब चुका पाऊंगा यह तो भगवान ही जानता है।"
और मंतव्य की आंखें नम हो जातीं।
कर्तव्य केवल पढ़ाई में ध्यान देता। वह कालेज और यूनिवर्सिटी की परीक्षा में फर्स्ट आता। अखबारों में उसकी तस्वीर छपती। पर मंतव्य को प्रसिद्धि से कोई लेना-देना नहीं था। उसका पूरा व्यक्तित्व सेवाभाव में ढल गया था। कालेज के चपरासी और आया के बच्चों की शिक्षा में आर्थिक मदद करता। अपना जन्मदिन भी गरीब परिवारों के बीच आचार्य की उपस्थिति में मनाता।
बीए. के बाद मंतव्य ने एमए और बीएड किया। आचार्य प्रमोद राय का आनंद असीम था। उन्होंने मंतव्य को यूपीएससी की परीक्षा देकर सरकारी नौकरी करने की सलाह दी।
इस पर मंतव्य ने कहा, "सर, मुझे सरकारी नौकरी नहीं करनी है। पेट पालने के लिए मुझे छोटी सी नौकरी कर लूंगा, साथ ही मेरी दूसरी नौकरी तैयार है। मुझे अपने पिता की विरासत संभालनी है।"
"मैं कुछ समझा नहीं।" शरतचंद्र ने कहा।
"सर, आप वृद्ध हो गए हैं। हमारे स्कूल को आपके आदर्शों के साथ चलाना मेरी ज़िम्मेदारी है। मैं उसे निभाना चाहता हूं। मेरे लिए मन का संबंध ही जीवन है।" मंतव्य ने कहा।
शरतचंद्र उसकी बात सुन कर गदगद हो गए। उसे गले लगा कर आशीर्वाद दिया। अगले दिन से मंतव्य ने

स्कूल की ज़िम्मेदारी संभाल ली।
एक महीना भी नहीं बीता था कि आचार्य शरतचंद्र बीमार पड़ गए। उनकी दोनों किडनियां फेल हो गई। डाक्टरों ने तुरंत दूसरी किडनी प्रत्यारोपित करने की सलाह दी। बहुत खोजबीन हुई, पर उपयुक्त किडनी नहीं मिली।
मंतव्य ने डाक्टर से कहा, "डाक्टर साहब, मेरी किडनी टेस्ट कर लीजिए। अगर मैच हो जाए तो मैं किडनी देने को तैयार हूं। लेकिन एक शर्त है, मेरा नाम और पहचान पूरी तरह गुप्त रखी जाए। आचार्य शरतचंद्र का कोई भी परिजन मेरी नजर के सामने न आए।"
डाक्टर उसकी बात सुन कर चकित रह गए। मंतव्य की किडनी मैच हो गई। डाक्टर ने आचार्य से कहा, "किडनीदाता मिल गया है। हिसाब-किताब ऑपरेशन के बाद कर लेंगे।"
किडनीदाता मिलने की बात सुन कर आचार्य का पूरा परिवार प्रसन्न हो गया। आचार्य को अस्पताल में भर्ती किया गया। तय दिन किडनी प्रत्यारोपण हुआ। ऑपरेशन सफल रहा। मंतव्य की शर्त के अनुसार सारी जानकारी गुप्त रखी गई। आचार्य को अस्पताल से छुट्टी मिली और मंतव्य को भी।
पंद्रह दिन बीत गए। डाक्टर बुके के साथ शुभकामना देने आचार्य शरतचंद्र के घर पहुंचे। तभी मंतव्य भी आ गया। आचार्य ने डाक्टर से हाथ जोड़ कर कसम दे कर कहा, "कृपया मुझे किडनीदाता का नाम बता दीजिए। मैं उसका आभार व्यक्त करना चाहता हूं।"
डाक्टर को लगा कि अब नाम बताने में कोई आपत्ति नहीं। उन्होंने कहा, "किडनीदान करने वाला फरिश्ता आप के सामने खड़ा है। आप का प्यारा विद्यार्थी 'मंतव्य'।"
शरतचंद्र जोर-जोर से रोने लगे। वह खड़े हो कर मंतव्य का सिर चूमते हुए बोले, "अरे बेटे, इस घोर कलियुग में कोई चुटकीभर नमक भी मुफ्त नहीं देता और तुमने जवानी में इस बूढ़े के लिए अपनी किडनी दे दी... तुम्हारा आभार किन शब्दों में मानूं।"
मंतव्य बोला, "मैंने किसी बूढ़े को किडनी नहीं दी। मैंने अपने पिता को किडनी दी है। जैसे जन्मदात्री मां का उपकार नहीं भुलाया जा सकता, उसी तरह मुझे गढ कर जीवन की राह दिखाने वाले गुरु का एहसान भी नहीं भुलाया जा सकता। आप सच्चे गुरु के रूप में मेरे पिता हैं।"
यह कह कर मंतव्य ने शरतचंद्र के चरण स्पर्श किए।
"कौन कहता है कि मानवता मर चुकी है? मंतव्य जैसे महापुरुषों के कारण ही यह धरती अरबों वर्षों से जीवित है। देश को ऐसे लाखों मंतव्यों की ज़रूरत है।"

जेड-436ए, सेक्टर-12,

नोएडा-201301 (उ.प्र.)
मो- 8368681336